शब्द–ब्रह्म
E ISSN 2320 – 0871
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
17 अक्टूबर 2019
पीअर रीव्यूड रेफ्रीड रिसर्च जर्नल

मुक्तिबोध के काव्य का तुलनात्मक अध्ययन समकालीन कवियों के संदर्भ में

ब्रह्मप्रकाश शर्मा (शोधार्थी)
डॉ. अनुभा पाण्डे (शोध निर्देशक)
विभागाध्यक्ष (हिन्दी विभाग)
शा.एस.एल.पी. महाविद्यालय
ग्वालियर, मध्यप्रदेश, भारत

शोध संक्षेप

मुक्तिबोध जिस युग में सामाजिक-राजनैतिक अंतर्द्वंद्वों को अभिव्यक्ति दे रहे थे, वह युग 'सपनों के टूटने' का युग था। स्वतन्त्र भारत जिस आशा और विशवास के साथ विकास पथ पर आरूढ़ हुआ वह विकास पथ क्रमश: अव्यवस्था और पूंजीवादी व्यवस्था के बीच फंसकर रह गया। बुद्धिजीवी वर्ग वैचारिक उच्छश्रृंखलता केसाथ धीरे-धीरे सत्ता-मोह और उससे जुड़ी पूंजीवादी मनोभ्रान्ति का शिकार हो गया। मध्यवर्गीय संस्कार मानव को यथास्थितिवादी और पराजयबोध से संचालित व्यक्ति बनाते चले गये और ऐसे में भारत जर्जर और अव्यवस्थित हो गया। गजानन माधव मुक्तिबोध ने अपनी कविताओं में इसे स्वर प्रदान किया। यह अभिव्यक्ति मूलतः सामाजिक सन्दर्भों को उजागर करती है और सामाजिक अंतर्द्वंद्वों को उद्भासित करती चेतना है। इसी सामाजिक चेतना को मुक्तिबोध के समकालीन कवियों ने अपने व्यक्तित्व के अनुसार देखा, जाँचा, परखा। यह जाँचना और परखना 'नयी कविता' के प्रवर्तक कवि अज्ञेय, शमशेर, भवानीप्रसाद मिश्र और नागार्जुन में अधिक स्पष्ट दिखाई देता है। प्रस्तुत शोध पत्र में मुक्तिबोध और समकालीन कवियों का तुलनात्मक अध्ययन किया गया है।

मुक्तिबोध और समकालीन कवि

हिन्दी काव्य साहित्य में 'नयी कविता' को विकास की ओर ले जाने वाले कवियों में अज्ञेय का नाम अग्रणी है। 'तार सप्तक' की उनकी परम्परा ने ही मुक्तिबोध जैसे कवि को पहली बार साहित्य जगत में स्थान दिलाया। एक तरह से मुक्तिबोध और अज्ञेय साहित्य की जिस धारा को पकड़े हुए थे वह धारा कहीं न कहीं सामाजिक रूढ़िबद्धताओं, पाखण्डों का खुला विरोध थी। अज्ञेय ने 'व्यक्ति स्वातंत्र्य' का एक व्यापक आयाम अपनाया और अपने सम्पूर्ण व्यक्तित्व में 'व्यक्तिगत स्वतन्त्रता' को समाहित कर लिया। मुक्तिबोध ने इसी स्वतन्त्रता को सामूहिक सन्दर्भ में ग्रहण किया। उनकी पहुँच हर प्रकार के शोषण के विरूद्ध थी जिसमें सामाजिक विश्रृंखलता और सामाजिक अवमूल्यन एकदम स्पष्ट उभर कर सामने आये।

नागर्जुन प्रगतिवादी काव्यधारा के सशक्त हस्ताक्षर हैं। उनका सम्पूर्ण साहित्य मुक्तिबोध की सामाजिक चिन्ता और सामाजिक चेतना का आगे का साहित्य है। नागार्जुन जिन आंचलिक मान्यताओं और निम्नवर्ग के प्रति गहरी चिन्ता की प्रवृत्तियों से संचालित रहे वही प्रवृत्तियां मुक्तिबोध की जीवन संगिनी थीं। नागार्जुन का सोच, उनका वैचारिक धरातल और उनकी

E ISSN 2320 – 0871
17 अक्टूबर 2019

मान्यताएँ भले ही मुक्तिबोध जैसी गहन बौद्धिकता से आप्लावित न हो, लेकिन उनमें एक तथ्य स्पष्ट है और वह है - शोषण के विरूद्ध गहरी वितृष्णा, शोषण का प्रतिकार। नागार्जुन ने इस अव्यवस्था और अलोक हितकारी प्रवृत्तियों का व्यंग्यात्मक रूप में पर्दाफाश किया :

घुन खाने शहतीरों की बारहखड़ी विधाता बाँचे,
फटी भीत है छत चूती है, आले पर विस्तुईया नाँचें,
बरसाकर बेबस बच्चों पर मिनट-मिनट में पाँच तमाचे,
इस तरह दुखरन मास्टर गढ़ता है आदम के साँचें।

नागार्जुन ने युगधारा, संतरंगे पंखों वाली, प्यासी पथराई आँखें, भस्मांकुर आदि काव्य कृतियों के माध्यम से समाज की पथराई, प्यासी और तप्त जीवन प्रवृत्तियों को उभार दिया। सबसे बड़ी बात तो यह है कि नागार्जुन मुक्तिबोध की ही तरह निम्नवर्गीय जीवन से प्रत्यक्ष जुड़े रहे। नागार्जुन ने उस स्कूली मास्टर के यथार्थ को समझा जो चार साल की चतुर, चपल, बहरी, गूंगी, लड़की को शिक्षा-दीक्षा का इन्तजाम करने से मोहताज है। नागार्जुन की दृष्टि 'राजनैतिक अधर्म' को सबसे ज्यादा कोसती है। यह अधर्म ही मूलतः देश में फैले भ्रष्टाचार और अनैतिकता का स्रोत है। यह अधर्म स्वातन्त्र्योत्तर भारत के नये नेताओं के कार्यो का प्रतिफल है। नागार्जुन ने स्पष्ट और खुले तौर पर नाम सहित ऐसे तथाकथित मार्गदर्शकों को उधेड़ दिया। मुक्तिबोध इन्हीं अवसरवादी राजनैतिक स्वार्थों की फेहरिस्त बनाते हैं और उन्हें अपने 'रात के जुलूस' में एकदम नंगा कर देते हैं।

नागार्जुन ने अपनी प्रसिद्ध कविता 'तुम रह जाते दस साल और' में उन्होंने पूंजीवादी नेता के चरित्र का मूल्यांकन किया। ठीक इसी तरह 'अब तो बन्द करो हे देवी यह चुनाव का प्रहसन' में उन्होंने इन्दिरा जी के जनमर्दिनी रूप को प्रस्तुत किया :

कार्तूसों की माला होगी, होगा दृश्य अनूप
हथगोला-पिस्तौल-स्टेनगन सज्जित चंडीरूप
अबकी अष्टभुजा का होगा खाकीवाला भेष
लोकों में गूँजेंगें अबकी फौजी अध्यादेश।

मुक्तिबोध का काव्य मूलतः व्यंग्य से संचालित काव्य नहीं है। उनका काव्य विध्वंस के बाद पुनर्निर्माण का भी काव्य है। उसमें असंगति, पराजय बोध के विरूद्ध सिर्फ भर्त्सना भर नहीं है, बल्कि उसमें है एक दृष्टि जो समस्याओं पर एक समाधान देने की कोशिश करती है। इस समाधान पर विवाद हो सकता है, लेकिन उसकी आस्था पर नहीं।

शमशेर 'नयी कविता' के प्रतिनिधि कवि हैं। वे मूलतः सौन्दर्यबोध के कवि माने जाते हैं। उनके लिए मुक्तिबोध ने लिखा- ''प्रणय जीवन के जितने विविध और कोमल चित्र वे प्रस्तुत करते हैं, उतने चित्र शायद और किसी कवि में दिखायी नहीं देता।'' लेकिन शमशेर को जीवन के कटु अनुभवों की कमी नहीं :

इंसान के अँखोटे में डालकर मुझे
सब कुछ तो दे दिया जब मुझे मेरे कवि
का बीज दिया कटु तिक्त। ('ओ मेरे घर')

इन अनुभवों ने शम्शेर को सामाजिक जकड़बन्दियों का स्पष्ट आभास करा दिया। सामाजिक विश्रृंखलता को जिस गहराई में श्मशेर ने समझा, वह गहराई उनके समाज दर्शन का आधार बनी। शमशेर की पीड़ा वर्तमान समाज को लेकर है।

यह मजेदार तथ्य है कि 'सप्तकों' की परम्परा के ये दोनों कवि भले ही वैचारिक एकता रखते हों,

E ISSN 2320 – 0871
17 अक्टूबर 2019

लेकिन दोनों के कथ्य, दोनों का शिल्प और यहां तक कि दोनों का लक्ष्य भी भिन्न है। शमशेर जहां सौन्दर्यपरक रूपवादी रूझान के कवि हैं, वहीं मुक्तिबोध यथार्थ के अन्वेषी। शमशेर जहां कम शब्दों में अधिक से अधिक भावाभिव्यक्ति कर देने में समर्थ हैं, वहीं मुक्तिबोध का शिल्प बिखरा और अनगढ़ है। उन्होंने शब्दों की मारक क्षमता पर अधिक ध्यान दिया। मुक्तिबोध का सौन्दर्य मधुर-मृसण नहीं, बल्कि उनका सौन्दर्य अनगढ़ और भदेस भी है।

'नयी कविता' के कवियों में भवानी प्रसाद मिश्र की एक विशिष्ट पहचान है। 'दूसरा सप्तक' में संगृहीत कविताओं के अतिरिक्त उनकी कविताएं - गीत-फरोश, अंधेरी कविताएं, परिवर्तन जिए, चकित है दुःख, बनी हुई रस्सी, अनाम तुम आते हो, फसलें और फूल इत्यादि काव्य-संग्रहों में प्रकाशित हुई। उनके काव्य में किसी वाद या परम्पराबद्धता की अनुकरणात्मक छाप नहीं है, वरन् उसमें मौलिकता और सहजता का समावेश है। यह सहजता मूलतः कवि-मन की भावुकता और वैचारिक प्रबुद्धता से निर्मित सहजता है। सामाजिक यथार्थ, शोषण, अन्याय, विषमता के पर्याप्त चित्र भवानी प्रसाद मिश्र ने अपनी काव्य यात्रा में उकेरे हैं। उनका व्यंग्यवादी तेवर और बाद की कविताओं में गांधीवादी छाप उन्हें सहज ही यथार्थ-बोध का कवि बना देती है।

शब्द टप-टप टपकते हैं फूल से,
सही हो जाते हैं मेरी भूल से।

भवानी प्रसाद का शुष्क बौद्धिकता से कोई नाता नहीं। उन्हें मुक्तिबोध की ही तरह उन बुद्धिजीवियों से गहरी षिकायत है जो शासन-सत्ता के दलाल की तरह कार्य करते हैं। उन्हें स्पष्ट आभास है कि बुद्धिजीवी वर्ग अपनी जिम्मेदारियों से मुकर रहा है, वह धन-लोभ के लिए कविता का प्रयोग कर रहा है:

हाँ हुजूर मैं गीत बेचता हूँ
तरह-तरह के गीत बेचता हूँ। (गीत फरोश)

मुक्तिबोध का मानस सामाजिक उत्तरदायित्व के लिये एक गहरी चिन्ता और चेतना रखता है। वह छटपटाता है-शोषण के विकराल रूप को देखकर। उसे रूलाई आती है चिमनियों से निकलते तप्त धुँए को देखकर। भवानी प्रसाद मिश्र भी इस शोषण की भट्टी को खूब पहचानते हैं। लेकिन उनकी पहचान प्रेम में डूबती-उतराती पहचान है। लयात्मक गीत और तुक से बद्ध उनकी कविता सामाजिक विश्रृंखलता को तो कम स्पष्ट करती है, वह स्पष्ट करती है वैयक्तिक मनोदषशा को, वैयाक्तिक अनुभूतियों से संचालित नहीं। उनका दर्शन मूलतः प्राकृतिक सुषमा को लय देता दर्शन है।

सतपुड़ा के घने जंगल
ऊँघते, अनमने जंगल। (सतपुड़ा के जंगल)

मिश्र जी की यह व्यापकता उनकी सामाजिक चेतना की तीव्रता को कम करते हैं। समाज जिन आघातों और कटु अनुभूतियों को झेल रहा था, उन्हें तो यथार्थ के पास रहकर ही पकड़ा जा सकता है। मुक्तिबोध का काव्य इस छायावादी भावुकता से कोसों दूर है। उसे सामाजिक सरोकारों से ही मतलब है। उसमें शोषण का विरोध करने की अद्भुत क्षमता है। उसमें संकुचित ही सही (उन पर यह आरोप रसवादियों ने लगाया है) लेकिन एक गहरी करूणा है, आक्रोश है और है समाज के प्रति अभिभावक की जिम्मेदारी की भावना।

केदारनाथ अग्रवाल यूँ तो मुक्तिबोध और नागार्जुन की प्रगतिवादी धारा के ही कवि हैं, लेकिन इन सबके अतिरिक्त उनमें एक सौन्दर्य

शब्द-ब्रह्म
E ISSN 2320 – 0871
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
17 अक्टूबर 2019
पीअर रीव्यूड रेफ़्रीड रिसर्च जर्नल

है, जो निम्नवर्ग की संवेदना को उभार देता है। जिसमें कभी वृद्ध महिला की पोपली हँसी दिखाई देती है तो कभी कार्य में व्यस्त मजदूर की पसीने से हर शक्ल साकार हो उठती है। उनकी कविता ''आदर्शवाद से यथार्थवाद, रूपशक्ति से जीवनशक्ति और कोमल रागात्मकता से खुरदरे वस्तुचित्रण तक की कविता है।''

केदारनाथ का समाज मुक्तिबोध का और उससे आगे का खंडित समाज है, जिसमें पराजयबोध, निराशा और जकड़बन्दियाँ हैं। यह स्वतन्त्रता के बाद का समाज टूटते सपनों का समाज था और इसे राजनीति के दुष्चक्रों ने ऊबड़खाबड़ बना दिया। इसी ऊबड़-खाबड़ समाज के प्रति गहरी जिम्मेदारी का भाव केदारनाथ में और स्वयं मुक्तिबोध में है। हाँ यहाँ फिर वही पुरानी बात उभरती है कि केदारनाथ इस भूले समाज में भी जीवनशक्ति देखते, उसमें भी उन्हें सौन्दर्य के दर्शन होते हैं, लेकिन मुक्तिबोध, वे तो इस समाज को इस जर्जर समाज को एकदम उलट-पुलट कर नया बना देने पर तुले हैं। उन्होंने अपनी चेतना को इस अव्यवस्थित और पूंजीवादी समाज के खात्मे तक सीमित कर लिया और इसलिए मुक्तिबोध का काव्य एक प्रहार है, उस सड़ी-गली मानसिकता पर जो समाज को पंगु बना रही है। केदारनाथ का अंचल प्रेम, प्रकृति-प्रेम और सूक्ष्म संवेगों के प्रति प्रेम उन्हें मुक्तिबोध से थोड़ा अलग ले जाता है। और यही वह स्तर है जहाँ मुक्तिबोध अपने साथी कवि केदारनाथ और नागार्जुन से दूर दिखाई देते हैं।

वस्तुतः मुक्तिबोध यथार्थ के कवि हैं। यथार्थ जो कड़वा है। जिसमे सब कुछ विलुप्त हो जाता है, जो जीवन संग्राम के चौखटों पर जंग खायी चिरकनी लगाता है। यथार्थ जो मुक्तिबोध को कहीं-कहीं तो अपराध बोध से भर देता है और देता आत्मावलोकन का अवसर। यह आत्मावलोकन मुक्तिबोध को ऐसा जीवन जीने के लिए मजबूर करता है जिसका अन्तिम सिरा बन्द स्याह गुफा में ही खुलता है और मिलता है, दर्द, कष्ट और जमानेभर की तकलीफें। यह तकलीफें मुक्तिबोध को केदारनाथ अग्रवाल के प्रगतिवाद से एक अलग तरीके का प्रगतिवादी कवि बनाती हैं और अधिक स्पष्ट करना चाहें तो यथार्थ की एक परम्परा के कवि नागार्जुन और केदारनाथ है तो यथार्थवाद की ही दूसरी परम्परा के कवि मुक्तिबोध हैं। इस यथार्थवाद को और अधिक व्यवस्थित करने की आवश्यकता आज भी बनी हुई है और इस पर विचार होना आज की जरूरत भी।

सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' छायावाद और बाद में प्रगतिवाद के समकालीन कवि हैं। कविता के आत्म-संघर्ष और कविता में प्रत्यक्ष जटिल सामाजिक संघर्ष को समझने के लिए यदि हम विगत अर्द्धशती के हिन्दी काव्य-परिदृश्य पर दृष्टि टिकाना चाहेंगे तो निराला का योगदान सबसे अधिक उत्तेजक, वैवध्यियुक्त और प्रखर जान पड़ेगा। निराला की काव्य संवेदना अधिक विषम, तीखी और उद्वेगकारी है। निराला पहले महत्वपूर्ण आधुनिक कवि हैं जिन्होंने मुक्तिबोध की तरह ही मनुष्य की मुक्ति के साथ ही काव्य भाषा की मुक्ति की चेष्टा की। मुक्तिबोध को भी यही चुनौती बार-बार झेलनी पड़ी :

अब अभिव्यक्ति के सारे खतरे उठाने होंगे,
तोड़ने ही होंगे, गढ़ और मठ सब। (अंधेर में)

निराला और मुक्तिबोध में दो व्यक्तित्व हिन्दी जगत में घोर उपेक्षा, घोर सामाजिक संत्रास और अव्यवस्थित जिन्दगी के पर्याय माने जाते हैं। निराला को जीवन भर साहित्य समीक्षकों के व्यवहार ने प्रताड़ित किया :

ईर्ष्या कुछ नहीं मुझे, यद्यपि
मैं ही वसन्त का अग्रदूत
ब्राहमण समाज में ज्यों अछूत,
मैं रहा आज यदि पार्श्व-छवि। (सुमनों के प्रति पत्र)

मुक्तिबोध तो जीवनभर उपेक्षा और अकेलेपन के षिकार रहे ही। एक कवि जिसने जीवन को जैसा लिखा, वैसा भोगा, जिसने समाज की आत्मा को झकझोर दिया, जिसने बुद्धिजीवियों के लिए लिखा :

विवेक वघार डाला स्वार्थो के तेल में। (अंधेरे में)

यह कवि अपने जीवन पर्यन्त अपना काव्य संकलन न निकाल सका और तो और उसकी रचनाओं को जब्त भी किया गया। यह जब्तीकरण परतंत्र भारत में होती तो मुक्तिबोध के लिए पुरस्कार होता, यह जब्तीकरण तो स्वतंत्र भारत में हुआ। जहाँ अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता को संविधान में स्थान दिया गया था। फिर भला ऐसे में निराला का स्वतंत्र भारत: 'पटरी है काले की गोरे पर बैठने की'। मुक्तिबोध के स्वतन्त्र भारत से कैसे भिन्न होता। मुक्तिबोध का समाज, निराला ने कुछ पहले ही देख लिया।

निराला और मुक्तिबोध का आत्मसंघर्ष और बाहरी संघर्ष ठीक एक जैसा है। निराला का कवि-मन असत् की वेदना से लड़तेलड़ते समाप्त होता है, ठीक वैसे ही मुक्तिबोध इन असत्य मूल्यों के विरूद्ध जीवनभर संघर्षरत रहे। निराला को असत्य के अंधेरों ने जकड़ लिया, लेकिन सत्य रूपी प्रकाश उन्हें संघर्ष के लिए मजबूर करता है। मुक्तिबोध से निराला का सम्बन्ध जितना अधिक गहरा है, उतना ही कबीर से भी। वस्तुतः कबीर, निराला, और मुक्तिबोध एक ही परम्परा के वाहक हैं। कहना तो यह चाहिए कि इन तीनों की एक ही चिन्ता है, एक ही उनका लक्ष्य और एक ही उनके साधन हैं। कबीर ने मध्यकालीन जर्जर व्यवस्था के विरूद्ध न सिर्फ सामाजिक विद्रोह को वाणी दी बल्कि उन्होंने वैयक्तिक स्तर पर भी जीवन की सच्चाई को भोगा :

सुखिया सब संसार है, खावे और सोवे
दुखिया दास कबीर है, जागे और रोवे।

रघुवीर सहाय नई कविता में क्षणबोध को पकड़ने वाले कवि हैं। उनकी दिलचस्पी अपने परिवेश में रही है और वे अपनी कविताओं में उसकी विसंगतियों और विडम्बनाओं का चित्रण करते रहे हैं।

रघुवीर सहाय के पास सही परिप्रेक्ष्य का अभाव तो दिखता है, लेकिन उनकी वैचारिक सूझ किसी सिद्वांत विशेष से कोसों दूर है और इसीलिए उनकी कविता सहज मानव की कविता है। वे 'सन्दर्भहीन समाचार' की कविता लिखते है। रघुवीर सहाय भावपूर्ण कविताएँ तो लिखते हैं लेकिन भावुकता उनमें लेशमात्र भी नहीं। उनकी कविता समाज के विरूद्ध डंडा लेकर पीछे पड़ जाने की कविता नहीं बल्कि जीवन को जीने की कविता है। इस जीवन जीने में समाज अपनी पूरी सार्थकता में आता है। समाज के प्रति उत्तरदायित्वों से रघुवीर मुँह नहीं मोड़ते लेकिन फिर भी मुक्तिबोध के सामाजिक यथार्थ के अपने अलग अर्थ हैं जिनसे रघुवीर सहाय का लेना-देना नहीं। रघुवीर सहाय का क्षणबोध - शाश्वत बोध है।

संदर्भ ग्रन्थ

1 परमानन्द श्रीवास्तव, शब्द और मनुष्य, पृष्ठ 49

2 संतोष कुमार तिवारी, नये कवि - एक अध्ययन पृष्ठ 101

3 लुना चासू, ऑन लिटरेचर एंड आर्ट, पृष्ठ 376

शब्द–ब्रह्म

E ISSN 2320 – 0871

भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका

17 अक्टूबर 2019

पीअर रीव्यूड रेफ्रीड रिसर्च जर्नल

4 मुक्तिबोध, नयी कविता का आत्म-संघर्ष तथा अन्य निबन्ध, पृष्ठ 70-7

5 नन्द किशोर नवल, शब्द जहाँ सक्रिय हैं, पृष्ठ 11

6 अज्ञेय (सम्पादक), दूसरा सप्तक पृष्ठ 88

7 नन्द किषोर नवल, शब्द जहाँ सक्रिय है, पृष्ठ 15

8 परमानन्द श्रीवास्तव, शब्द और मनुष्य, पृष्ठ 62

9 आलोचना, जुलाई-सितम्बर, 1992 (शमशेर - फूल नहीं रंग बोलते हैं)

10 परमानन्द श्रीवास्तव, शब्द और मनुष्य, पृष्ठ 11